# इकाई 2 .व्यास-परिचय, समय, महाभारत का परिचय

इकाई की रूपरेखा

## 2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आपने आदिकवि बाल्मीकि एवं उनकी रचना रामायण के बारे में जाना। वैदिक सनातन परम्परा में धर्म की स्थापना करने हेतु धर्मग्रन्थ के रचनाकार वेदव्यास का परिचय, समय एवं महाभारत का परिचय वर्णन से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। महाभारत धर्मग्रन्थ के साथ – साथ मानवीय सभ्यता की मर्यादा एवं आदर्श स्थापित करने वाला एक महासूत्र है, जिसको अपनाकर मानव अपना एवं अपने राष्ट्र का सर्वतोमुखी विकास करने में सफल हो सकता है।

इस इकाई में आप महाभारत एवं उसके रचयिता वेदव्यास से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि महाभारत के रचयिता वेदव्यास जी सत्यवती के पुत्र थे, जो स्वयं महाभारत के एक महत्वपूर्ण पात्र थी । यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास जी 'द्वैपायन' कहलाते थे, शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए चारों वेदों को संहिताओं में विभाग करने के कारण 'वेदव्यास' के नाम से विख्यात थे।

## 2.2 उद्देश्य

स्वार्थ पुरूषार्थ और परमार्थ की परम्परा के वर्णन में सर्वाधिक समृद्ध ग्रन्थ जय भारत और महाभारत के वर्णन से सम्बन्धित इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप यह बतायेंगे कि –

- व्यास कौन थे। यह किसी का नाम है अथवा उपाधि।
- महाभारत का परिवर्द्धन कितनी श्रेणियों में हुआ है।
- महाभारत में जीवन से सम्बन्धित सामान्य और विशिष्ट प्रकार की शिक्षायें क्या है।
- महाभारत का अंगी रस क्या है।
- शान्त रस को महाभारत में किस कारण से अंगीरस के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।
- महाभारत की साहित्यिक विशेषतायें क्या है।

## 2.3 व्यास का परिचय

**व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।**
**भूषणतयैव संज्ञां यदडिकतां भारती वहति ॥**
**गोवर्धनाचार्य**

रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का

इतिहास – वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मगन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता', 'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। इन्हीं पॉच ग्रन्थों को 'पंचरत्न' के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं गुणों के कारण महाभारत 'पंचम वेद' के नाम से विख्यात है।

वाल्मीकि के समान व्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू, पद्य , कथा, आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। इतना ही क्यों ? जावा,सुमात्रा के साहित्य में भी महाभारत विद्यमान है। वहॉ के लोग भी महाभारत के कथानक से उसी प्रकार शिक्षा ग्रहणकरते हैं तथा पाण्डव-चरित के अभिनय से उसी प्रकार मनोरंजन करते हैं जिस प्रकार भारतवासी। महाभारत इतना विशाल है कि व्यासजी का यह कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है- 'इस ग्रन्थ में जो कुछ है वह अन्यत्र है, परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।[1] प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुरनीति, जिसमें आचार तथा लोकव्यवहार के नियमों का सुन्दर निरूपण है, महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक , राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

## रचयिता

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास का सम्बन्ध महाभारत के पात्रों के साथ बहुत ही घनिष्ठ है। उनकी माता का नाम सत्यवती था। मल्लाहों के राजा दासराज के द्वारा जन्मकाल से ही उनकी रक्षा तथा पोषण हुआ था। यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास जी 'द्वैपायन' कहलाते थे, शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए एक को वेद चार संहिताओं में विभाग करने के कारण 'वेदव्यास' के नाम से विख्यात थे। वे धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर के जन्मदाता ही नहीं थे, प्रत्युत पाण्डवों का विपत्ति के समय छाया के समान अनुगमन करने वाले थे तथा अपने उपदेशों से उन्हें धैर्य, ढाढस तथा न्यायपथ पर आरूढ़ रहने की शिक्षा दिया करते थे। कौरवों को युद्ध से विरत् करने के लिए इन्होंने कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखा, परन्तु विषय –भोग के पुतले इन कौरवों ने इनके उपदेशों को लात मारकर अपनी करनी का फल खूब ही पाया। इनसे बढकर भारतीय युद्ध के वर्णन करने का अधिकारी कोई दूसरा विद्वान् नहीं

था। इन्होंने तीन वर्षो तक सतत परिश्रम से – सदा उत्थान से –इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की (आदिपूर्व-56/52):-

**त्रिभिर्वर्षै: सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनि:।**
**महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ।।**

ऐसे महनीय ग्रन्थ की तीन वर्षो के भीतर रचना का कार्य ग्रन्थकार की अनुपम काव्य-प्रतिभा तथा अदम्य उत्साह का पर्याप्त सूचक है।

आजकल महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं। इसलिए इसे 'शतसाहस्र-संहिता' कहते हैं। इसका यह स्वरूप कम से कम डेढ़ हजार वर्ष से पुराना अवश्य है, क्योंकि गुप्त – कालीन शिलालेख में यह 'शतसाहस्री संहिता' के नाम से उल्लिखित हुआ है। विद्वानों का कहना है कि महाभारत का वह रूप अनेक शताब्दियो में विकसित हुआ । बहुत प्राचीन काल से अनेक गाथाएँ तथा आख्यान इस देश में प्रचलित थे, जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का वर्णन किया था । अथर्ववेद में परीक्षित का आख्यान उपलब्ध होता है। अन्यवैदिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र महाभारत के वीर पुरूषों की बातें उल्लिखित मिलतीहैं। इन्हीं सब गाथाओं तथा आख्यानों को एकत्र कर महर्षि वेदव्यास ने जिस काव्य का रूप दिया है वही आजकल का सुप्रसिद्ध महाभारत है ।

## 2.4 महाभारत का परिचय

महाभारत के विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं- (1) जय, (2) भारत, (3) महाभारत। इस ग्रन्थ का मौलिक रूप (1) 'जय' नाम से प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ में नारायण[1] , 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है। वहीं स्वयं लिखा हुआ है कि इसका प्राचीन नाम जय था।[2] पाण्डवों के विजय-वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है।

(2) भारत – 'जय के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिधान पड़ा - भारत । नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था । उस समय उसका परिणाम केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था । (3 ) उपाख्यानों के समावेश ने इसे भारत से 'महाभारत' का रूप प्रदान किया, जो अपने 'खिल पर्व '(अर्थात् परिशिष्ट रूप) 'हरिवंश' से संयुक्त होकर परिमाण में चतुर्गुण हो गया –एक लाख श्लोक वाला ।

(3) **महाभारत** - लगभग पॉंच सौ वर्ष ईस्वी पूर्व विरचित आश्वलायन गृह्यसूत्र में 'भारत' के साथ 'महाभारत' का नाम निर्दिष्ट है। भारत के वर्तमान रूप में परिबृंहण का कार्य उपाख्यानों के जोड़ने से ही निष्पन्न हुआ है। इन उपाख्यानों में कुछ तो प्राचीन ऋषि तथा राजाओं के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण घटना-प्रधान हैं, कतिपय तत्कालीन लोक – कथा के ही साहित्यिक संस्करण हैं और इस दृष्टि से इनकी तुलना जातकों के साथ की जा सकती है। अध्यात्म, धर्मतथा नीति की विशद विवेचना ने इस महाभारत को भारतीय धर्म तथा संस्कृति का विशाल 'विश्वकोष' बनाने में कुछ उठा नहीं रखा । डाक्टर सुखठणकर का

प्रमाणपुष्ट मत है[4] कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादनों का ही फल महाभारत का वर्तमान वृद्धिंगत रूप है। कुलपति शौकन स्वयं भार्गव थे, उनकी जिज्ञासा भार्गववश की कथा सुनने की थी। तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्।

महाभारत के नाना उपाख्यानों का सम्बन्ध स्पष्टरूप से भार्गवों के साथ है। और्व (आदि) कार्तवीर्य (वन) , अम्बोपाख्यान (उद्योग) ,विपुला (शान्ति), उर्त्तक (अश्व0) इन समग्र विख्यात् आख्यानों का सीधा सम्बन्ध भार्गवों के साथ है। आदि पर्व के प्रथम 53 अध्याय (पौलोम तथा पौष्यपर्व ) भार्गववंशीय कथा से अपना सम्बन्ध रखता है।

## महाभारत का रचना काल

आज उपलब्ध महाभारत लक्ष श्लोकात्मक हैं। यह स्वरूप अठारह पर्वो का न होकर हरिवंश से संयुक्त करने पर ही सिद्ध होता है। परिशिष्ट होनेसे हरिवंश भी महाभारत का अविभाज्य अंग माना जाता था और इन दोनों को मिलाने पर ही एक लाख श्लोक की संख्या निर्णीत होती है। इस 1 महाभारत के काल-निर्णय के निमित्त कतिपय प्रमाण उपस्थित किये जाते है:-

(क) अठारह पर्वो का यह ग्रन्थ तथा हरिवंश संवत् 535 और 635 के बीच जावा तथा बाली द्वीपों में विद्यमान थे। कविभाषा में अनूदित समग्र ग्रन्थ के आठ पर्व-आदि, विराट, उद्योग, भीष्म, आरमवासी, मुसल,प्रस्थानिक और सवर्गरोहण-बाली में इस समय उपलब्ध हैं और कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। अनुवाद के बीच-बीच में मूल श्लोक भी दिये गये है, जो महाभारत के श्लोक से मिलते हैं। फलत: 535 सं0 से कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व भारत में महाभारत का प्रामाण्य अंगीकृत था।

(ख) गुप्त शिलालेखों में एक शिलालेख (चेदि संवत् 197 विक्रमी 502=445 ईस्वी ) में महाभारत का उल्लेख 'शतसाहस्री संहिता' अभिधान द्वारा किया गया है। अत: इस समय से दो सौ वर्ष पूर्व महाभारत को वर्तमान रूप में होना अनुमान सिद्ध है।

(ग) महाकवि अश्वघोष ने अपने 'वज्रसूची उपनिषद्' में हरिवंश के श्राद्ध माहात्म्य में से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश 24/20, 21 ) इत्यादि श्लोक तथा महाभारत के ही अन्य श्लोक (शान्तिपर्व 261/17) पाये जाते हैं। इससे प्रकट है कि प्रथम शती से पूर्व हरिवंश को मिलाकर वर्तमान महाभारत प्रचलित था।

(घ) आश्वलायन गृह्यसूत्रों में (3/4/4) भारत और महाभारत का पृथक –पृथक उल्लेख किया गया है। बौधायन धर्मसूत्रों (2/2/26) के एक स्थान पर महाभारत वर्णित ययाति उपाख्यान का एक श्लोक मिलता है (आदि 78/10) तथा बौधायन गृह्य सूत्र में 'विशणुसहस्रनाम' का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं है, प्रत्युत् इसमें (2/22/9) गीता का 'पत्रं पुष्पं फलं तोय' श्लोक (गीता9/26) उद्धृत है। बौधायन ईस्वी सन् से लगभग चार सौ वर्ष पहिले हुए थे- ऐसा डॉ0 बूलर ने प्रमाणित किया है।

(ड़) महाभारत में जहॉं विष्णु के अवतारों का वर्णनकिया गया है, वहॉं बुद्धका नाम तक नहीं

है। नारायणीयोपाख्यान (शान्तिपर्व 339/100) में दश अवतारों के भीतर हंस को प्रथम अवतार माना गया है और बुद्ध का उल्लेख न कर 'कल्कि'का निर्देश कृष्ण के तुरन्त बाद में किया गया है। फलत: बुद्ध से अनभिज्ञ महाभारत बुद्धपूर्वयुग की नि:संदिग्ध रचना है।

(च) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आनेवाल यूनानी राजदूत मेगस्थानीज ने अपने भारत-विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि हिरेक्लीज अपने मूल पुरूष डायोनिसस से पन्द्रहवॉ था और उसकी पूजा मथुरा के निवासी शौरसेनीय लीग आदर के साथ करते थे। हिरेक्लीज से श्रीकृष्ण का ही बोध होता है, जो महाभारत के अनुसार दक्ष प्रजापति से पन्द्रहवें पुरूष थे (अनुशासन 14/7/25-33) । इतना ही नहीं, मेगास्थनीज ने विचित्र लोगों-कर्ण प्रावरण, एकपाद , ललटाक्ष आदि- का और सोना निकालनेवाली चीटियों का जो वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है वह महाभारत के ही आधार पर है (सभापर्व 51 और 52 अ0) । फलत: वह केवल महाभारत से ही परिचित नहीं था, प्रत्युत् उस युग में प्रचलित कृष्ण-चरित तथा कृष्ण पूजा से भी अवगत था।

इन प्रमाणों के साक्ष्य पर यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान महाभारत का निर्माण बुद्ध के पूर्व युग से सम्बद्ध है। ईस्वी पूर्व पन्चम अथवा षष्ठ शती में उसकी रचना हुई।

## ग्रन्थ परिचय

महाभारत के खण्डों को पूर्व कहते हैं। ये संख्या में 18 अठारह हैं-

(1) आदि, (2) सभा, (3) वन, (4) विराट, (5) उद्योग, (6) भीष्म , (7) द्रोण, (8) कर्ण, (9) शल्य, (10) सौप्तिक, (11) स्त्री, (12) शान्ति, (13) अनुशासन, (14) अश्वमेघ, (15) आश्रमवासी, (16) मौसल, **(17)** महाप्रस्थानिक, (18) स्वर्गारोहण। आदि पर्व में चन्द्रवंशका विस्तृत इतिहास तथा कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन है। सभा पर्व में द्यूतक्रीडा, वन पर्व में पाण्डवों का वनवास, विराटपर्व में पाण्डवों का अज्ञातवास, उद्योग पर्व में श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरवों की सभा में जाना तथा शान्ति का उद्योग करना,भीष्म पर्व में अर्जुन को गीता का उपदेश ,युद्ध का आरम्भ , भीष्म का युद्ध और शरशय्या पर पड़ना; द्रोण पर्व में अभिमन्यु –वध, द्रोणाचार्य का युद्ध और वध; कर्ण का युद्ध और वध; शल्य पर्व शल्य की अध्यक्षता में लड़ाई और अन्त में वध, सौप्तिक पर्व में पाण्डवों के सोये हुए पुत्रों का रात में अश्वत्थामा द्वारा वध; सत्रीपर्व में स्त्रियों का विलाप; शान्तिपर्व में भीष्म पितामह का युधिष्ठिर को मोक्षधर्म तथा राजधर्म का उपदेश; अनुशासन पर्व में धर्म तथा नीति की कथाएें; अश्वमेघ पर्व में युधिष्ठिर का अश्वमेघ यज्ञ करना; आश्रमवासी पर्व में धृतराष्ट्र, गान्धारी आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना; मौसल पर्व में यादवों का मूसल के द्वारा नाश; महाप्रस्थानिक पर्व में पाण्डवों की हिमालय-यात्रा तथा स्वर्गारोहण पर्व में पाण्डवों का स्वर्ग में जाना वर्णितहै।

इनके अतिरिक्त महाभारत में अनेक रोचक तथा शिक्षाप्रद उपाख्यान भी है, जिनमें निम्नलिखित आख्यान विशेष प्रसिद्ध हैं-

(1) **शकुन्लोपाख्यान** - यह उपाख्यान महाभारत के आदिपर्व में है (आ0 71), जिसमें दुष्यन्त और शकुन्तला की मनोहर कथा है। महाकवि कालिदास के 'शकुन्तलां नाटक का आधार यही आख्यान है।

(2) **मत्स्योपाख्यान-** यह वनपर्व में है। इसमें मत्स्यावतार की कथा है, जिसमें प्रलय उपस्थित होने पर मत्स्य के द्वारा मनु के बचाये जाने का विवरण है । यह कथा 'शतपथ ब्राह्मण' में भी उपलब्ध होती है तथा भारत से भिन्न् देशों के इतिहास में भी इसका उल्लेख मिलता है ।

(3) **रामोपाख्यान**- यह भी कथा वनपर्व के 18 अध्यायों में वर्णित है (अ0 274-291) ।

**(4) शिवि उपाख्यान-** यह सुप्रसिद्ध कथानक वन पर्व में ही है जिसमें उशीनर के राजा शिवि ने अपना प्राण देकर शरण में आये कपोत की रक्षा बाज से की थी (अ0 130) यह कथा जातकों में भी आती है।

**(5) सावित्री उपाख्यान-** भारतीय ललनाओं के लिए आदर्शरूप सावित्री की कथा वनपर्व में मिलती है। महाराज द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् तथा सावित्री का उपाख्यान पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा है । ऐसी सुन्दर कथा शायद ही किसी अन्य साहित्य में प्राप्त हो (अ0 239)।

**(6) नलोपाख्यान-** राजा नल और दमयन्ती की कमनीय कथा इसी पर्व में मिलती है (अ0 52-79) । श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' महाकाव्य का यही आधार है।

**हरिवंश**

महाभारत के खिल पर्व होने के कारण हरिवंश की आलोचना अब प्रसंग प्राप्त है। हरिवंश में श्लोकों की संख्या सोलह हजार तीन सौ चौहत्तर (16, 374 श्लोक ) श्रीमद्भागवत की श्लोक –संख्या से कुछ ही अधिक है। डॉ0 विन्टरनित्स के कथनानुसार यूनानी कवि होमर के दोनों महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडिसी' की सम्मिलित पद्य संख्या से भी यह अधिक है, परन्तु यह एक लेखक की रचना न होकर अनेक लेखकों के संयुक्त प्रयास का फल है। हरिवंश का अन्तिम पर्व (ग्रन्थ का तृतीय भाग) तो परिशिष्ट भूत हरिवंश का भी परिशिष्ट है और काल क्रम से सबसे पीछे का निर्मित भाग है।

हरिवंश में तीन पर्व या खण्ड हैं-

**(क) हरिवंश पर्व-** कृष्ण के वंश वृष्णि-अन्धक की कथा विस्तार से दी गयी है और इस आदिम पर्व के वर्णन के अनन्तर राजा पृथु की कथा विस्तार से दी गयी है ।

सूर्यवंशीय राजाओं के प्रसंग में विश्वामित्र तथा वसिष्ठ का भी आख्यान वर्णित है। प्रसंग से पृथक् हटकर प्रेतकल्प (अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध) का वर्णन नौ अध्यायों में (अ0 16-24) विस्तार से निबद्ध है और इसीके अन्तर्गत 21 वें अध्याय में पशुओं की बोली को समझने-बूझने वाले ब्रह्मदत्त की कथा दी गई है। चन्द्रवंशीय राजाओं के वर्णन के अवसर पर राजा पुरूरवा और उर्वशी का प्रख्यान से समानता रखता है (अ0 26) । नहुष, ययाति तथा यदु के वर्णन के पश्चात् विष्णु की अनेक स्तुतियॉ प्रस्तुत की गई हैं। जो एक प्रकार से

कृष्ण के पूर्व दैवी इतिहास का प्ररिचय देती हैं।

**(ख) विष्णुपर्व** –यह समय ग्रन्थ का अतिशय विस्तृत तथा महनीय भाग है। इसमें कृष्णचन्द्र की विविध लीलाओं का, विशेषत: बाललीलाओं का, बड़ा ही सांगोपांग रूचिर विवरण है श्रीमद्भागवत के वर्णनसे तुलना करने पर अनेक स्थल पर पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं अन्य घटनायें भी दी गयी हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जन्म, शंबर द्वारा हरण, समुद्र से प्राप्ति तथा मायावती के साथ विवाह आदि प्रख्यात कथाओं का यहॉं उल्लेख है, परन्तु असुरों के राजा वज्रनाभ की दुहिता प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का विवाह और वह भी नितान्त नाटकीय ढंग से एकदम नूतन तथा पर्याप्तरूपेण रोचक है (150 अ0)। इसी प्रकार प्रख्यात रासलीला का हल्लीसक नृत्य के रूप में निर्देश किसी प्राचीन युग की स्मृति दिलाता है। इस पर्व के अन्त में अनिरूद्ध का विवाह बाणासुर की कन्या उषा के साथ बड़े उमंग और उत्साह से वर्णित है और इससे पूर्व 'हरि-हरात्मक स्तव' (अ0 184) द्वारा शिव और विष्णु की एक ही अभिन्न देवता के रूप में सुन्दर स्तुति की गई है। इस पर्व में विषय की एकता और वर्णनकी संगति से प्रतीत होता है कि प्राचीन युग में 'श्रीकृष्ण चरित काव्य' के साथ यह अंश सम्बन्ध रखता है, परन्तु तृतीय भाग के विषय में किसी एकता की कल्पना नहीं की जा सकती।

(ग) भाविष्यपर्व- यह भाग विविध वृत्तों का पौराणिक शैली में परस्पर असम्बद्ध संकलन है। इस पर्व का नामकरण प्रथम अध्याय के नाम पर है, जहॉं भविष्य में होने वाली घटनाओं का संकेत किया गया है। जनमेजय द्वारा विहित यज्ञों का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है (अ0 191-196)। विष्णु के सूकर, नृसिहं तथा वामन अवतारों के वर्णन के अनन्तर- शिवपूजा तथा विष्णु पूजा के समन्वय की दिशा दिखाई गई है। शिव के दो उपासक हंस तथा डिम्भक की कथा विस्तार से है, जिन्हे कृष्ण ने पराजित किया था। महाभारत के माहात्म्य वर्णन के पश्चात् समग्र हरिवंश का ध्येय हरि की स्तुति में प्रदर्शित किया गया है-

'आदावन्ते च मध्ये च हरि: सर्वत्र गीयते'।

## हरिवंश का स्वरूप

एक ओर हरिवंश महाभारत का परिशिष्ट (खिल) माना जाता है और दूसरी ओर यह 'पुराण' नाम से भी अभिहित होता है। इसके पोषक प्रमाणों की कमी नहीं है-

(1) महाभारत के आरम्भ में ग्रन्थ के समग्र पर्वो की संख्या एक सौ परिगणित है (आदि अ0 2) और इसके भीतर हरिवंश भी सम्मिलित किया गया है (आदि 2/82-83)। ध्यान देने की बात तो यह है कि हरिवंश 'खिलसंज्ञित पुराण' कहा गया है। (हरिवंशसतत: पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्)। फलत: व्यास की दृष्टि में खिल और पुराण दोनों साथ-साथ होने में कोई वैषम्य नहीं है।

(2) हरिवंश के 20 वें अध्याय में 'यथा ते कथितं पूर्व मया राजर्षिसत्तम' के द्वारा ययाति

के चरित की महाभारत में पूर्व स्थिति का स्पष्ट निर्देश है (आदिपर्व अ0 81-88)।

(3) हरिवंश के 32 वें अध्याय में अदृश्यवाणी का कथन 'त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला' के द्वारा महाभारत में शकुन्तलोपाख्यान की ओर स्पष्ट संकेत है तथा 54 अध्याय में कणिक मुनि महाभारत में कणिक मुनि की पूर्व स्थिति बतलाता है (आदिपर्व अ0 140)।

(4) हरिवंश का उपक्रम तथा उपसंहार बतलाता है कि हरिवंश महाभारत का ही परस्पर सम्बद्ध खिल पर्व है। उपक्रमाध्याय में भारती कथा सुनने के बाद वृष्णि अन्धक चरित सुनने की इच्छा शौनक ने सौति से जो प्रकट की वह दोनों के सम सम्बन्ध का सूचक है। हरिवंश के 132 वेंअ0 में महाभारत के कथाश्रवण का फल है, जिस कथन की संगति हरिवंश के महाभारत के अन्तर्गत मानने पर ही बैठ सकती है, अन्यथा नहीं।

(5) बहिरंग प्रमाणों में आनन्दवर्धन का यह कथन साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि महाभारत के अन्त में हरिवंश के वर्णन से समाप्ति करने वाले व्यासजी ने शान्तरस को ही ग्रन्थ का मुख्य रस व्यन्जना के द्वारा अभिव्यक्त किया है।[1]

फलत: हरिवंश महाभारत का 'खिल' पर्व है। साथ ही साथ पन्चलक्षण से समन्वित होने से यह 'पुराण' नाम्ना भी अभिहित किया जाता है, परन्तु न तो यह महापुराणों में अन्तर्भूत होता है और न उपपुराणों में। दोनों से इसकी विशिष्टता पृथक् ही है।

## हरिवंश का कालनिर्णय

हरिवंश के कालनिर्माण तथा महाभारत के साथ सम्बद्ध होने के काल का निर्णय प्रमाणों द्वाराकिया जा सकता है-

(क) हरिवंश के साथ सम्मिलित होकर लक्ष श्लोकात्मक रूप धारण करने वाला महाभारत 'शत साहस्री संहिता' के नाम से 454 ईस्वी के गुप्त शिलालेख में उल्लिखित है।

(ख) अश्वघोष (प्रथमशती ) ने अपने वज्रसूची उपनिषद् में हरिवंश के 'प्रेतकल्प' प्रकरण से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश 24/20, 21) इत्यादि श्लोकों को प्रमाण रूप से उद्धृत किया है। अत: हरिवंश की रचना प्रथमशती से अर्वाचीन नहीं हो सकती।

(ग) हरिवंश (विष्णु पर्व 55/50) में 'दीनार' का उल्लेख उसके रचनाकाल का द्योतक है। रोम साम्राज्य के सोने के सिक्के 'दिनारियस' कहलाते थे और उसी शब्द का संस्कृत रूप ' दीनार' है। इस शब्द का सबसे प्राचीन प्रयोग प्रथमशती के शिलालेखों में उपलब्ध होता है।

(घ) हरिवंश के एक श्लोक में शुंगब्राह्मण राज्य के संस्थापक पुष्यमित्रशुंग द्वारा यज्ञ का उल्लेख भविष्य में होनेवाली घटना के रूप में निर्दिष्ट किया गया है-

**उपात्तयज्ञो देवेसु ब्राह्मणेषुपपत्स्यते।**
**'औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानी: काश्यपो द्विज:।**
**अश्वमेधं कलियुगे पुन: प्रत्याहरिष्यति ।।(हरिवंश 3/2/39-40)**

यह तो प्रसिद्ध ही है कि ब्राह्मण सेनापति पुष्पमित्र ने दो बार अश्वमेघ यज्ञ किया था, जिनमें महाभाष्य के रचयिता पतन्जलि स्वयं ऋत्विक् रूप से उपस्थित थे। 'इह पुष्पमित्रं याजयाम:'-महाभाष्य । पुष्पमित्र ने लगभग 36 वर्षो तक राज्य किया (लगभग ईस्वी पूर्व187-151) और आरम्भ में वे मौर्य सम्राट् के सेनापति थे। इसी प्रसिद्ध सेनानी का निर्देश इस श्लोक में है। फलत: हरिवंश का रचनाकाल इससे पूर्व नहीं, तो इसके कुछ ही पश्चात् होना चाहिए । अतएव 'हरिवंश' का निर्माण काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में मानना सर्वथा सुसंगत होगा ।हरिवंश का धार्मिक महत्व सर्वत्र प्रख्यात है । सन्तान के इच्छुक व्यक्तियों के लिये 'हरिवंश' के विधिवत् श्रवण का विधान लोक प्रचलित है । शपथ खाने के लिए पुरूषों के हाथ पर हरिवंश की पोथी रखने का प्रचलन नेपाल में उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी मुसलमान के हाथ पर कुरान रखने का। श्रीकृष्ण के चरित के तुलनात्मक अध्ययन के लिए हरिवंश के विष्णुपर्व का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। प्राचीन भारत की ललित कलाओं के विषय में हरिवंश बहुत ही उपादेय सामग्री प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारत में नाटक के अभिनय-प्रकार की जानकारी के लिए यहॉं उपादेय तथ्यों का संकलन है। सबसे महत्वपूर्ण है हरिवंश में राजनैतिक इतिहास का वर्णन, जो किसी भी प्राचीन पुराण के वर्णन से उपादेयता और प्रामाणिकता में किसी प्रकार न्यून नहीं है[2] । फलत: प्रथम शती में भारती संस्कृति की रूपरेखा जानने के लिए हरिवंश' हमारा विश्वनीय मार्गदर्शक है।

## महाभारत के टीकाकार

महाभारत के टीकाकारों की एक दीर्घ परम्परा है जिसके अन्तर्गत बड़े विद्वानों तथा अध्यात्मवेत्ता की गणना है। डॉ0 सुखठणकर के अनुसार महाभारत के टीकाकारों के नाम निम्नलिखित हैं:- अनन्तभट्ट, अर्जुन मिश्र, आनन्द, चतुर्भुज मिश्र, जगदीश चक्रवर्ती, देवबोध , नीलकण्ठ , महानन्द पूर्ण , यज्ञनारायण, रत्नगर्भ, रामकिंकर, रामकृष्ण, रामानुज, लक्ष्मण, वरद, वादिराज, विद्यासागर, विमलबोध, शंकराचार्य श्रीनिवास, सर्वज्ञनारायण, सृष्टिधर (22) ।इन बाइस टीकाकारों के अतिरिक्त अन्य टीकाकार भी हैं- गदानन्द ('भारत-ज्ञान-दीपक' नामक टीका के कर्ता, जिनकी टीका का हस्तलेख वर्गीय साहित्य परिषद् में उपलब्ध है) , जगद्धर,जनार्दनमुनि और विद्यानिधिभट्ट (जिन चारोंका निर्देश आनन्द-पूर्ण ने अपनी भारत-टीका में किया है), वैशम्पायन तथा शान्डिल्य माधव (30) –(जिनमें प्रथम का निर्देश विमलबोध ने तथा अन्तिम दो का अर्जुन मिश्र ने अपनी टीकाओं में किया है), किसी रामकृष्ण की विरोधार्थभंजिनी व्याख्या तथा अज्ञातनामा लेखक का 'विषमपद-विवरण' विराटपर्व के ऊपर प्रकाशित हैं । आठ टीकाओं के 'लक्षाभरण' की कुछ टिप्पणियॉं विराट तथा उद्योग पर्व पर प्रकाशित हैं। आठ टीकाओं के साथ विराट पर्व को 1915 ई0 में तथा पॉच टीकाओं के साथ उद्योग पर्व को 1920 में गुजराती प्रिटिंग प्रेस ने प्रकाशित कर महाभारत के अनुशीलन कार्य में विशेष योगदान दिया है। 'निगूढ़पदबोधिनी' तथा 'भारतटिप्पणी' नामक अज्ञातनामा लेखकों की व्याख्या के अतिरिक्त उत्कल के कवीन्द्र (लगभग 1600 ई0) की 'भारत-

व्याख्या' मिलती है। वादिराज की व्याख्या का नाम 'लक्षश्लोकालंकार' भी है। श्रीधराचार्य ने मोक्षधर्म के ऊपर अपनी व्याख्या लिखी है। इस प्रकार महाभारत के 36 टीकाकारों का पता पूर्णरूप से चलता है। इन टीकाकारों में से अनेक के तो नाम ही यत्र-तत्र निर्दिष्ट हैं तथा कतिपय टीकाकारों की टीका एक पर्व पर अथवा अनेक पर्व पर मिलती है। ऐसे श्लाध्य टीकाकार भी हैं जिनकी टीका भारत के 18 पर्वों पर उपलब्ध होती है इनमें प्रख्यात कतिपय टीकाकारों का कालक्रम से संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:-

**(1) देवबोध या देवस्वामी-** महाभारत के सर्वप्राचीन उपलब्ध टीकाकार है, जिनका उल्लेख पिछले टीकाकारों ने बड़े आदर तथा सम्मान के साथ किया है। इनकी टीका आदि, सभा[1] 'भीष्मपर्व[1] तथा उद्योग पर्व के ऊपर प्रकाशित भी हो चुकी है। टीका की पुष्पिका में ये परमहंस परिव्राजकाचार्य कहे गये हैं। फलत: ये अद्वैतवादी सन्यासी थे। इनके गुरू का नाम सत्यबोध मिलता है। यह विस्तृत नहीं है;कठिन शब्दों का अर्थ देकर यह विषम स्थलों का तात्पर्य भी देती है। यह टीका अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है। इसका प्रभाव पिछले टीकाकारों पर प्रचुर मात्रा में है। और मतभेद होने पर भी टीकाकारों ने इसका उल्लेख बड़े आदर तथा सम्मान के साथ किया है। अर्जुनमिश्र के द्वारा यह श्लाघ्य स्तुति टीकाकारों के हार्दिक भाव को प्रकट करती है-

**वेदव्यासमुखाम्भोजगलितं वाङ्मयामृतम्।**
**संभोजयन्तं भुवनं देवबोधं भजामहे।।**

विमलबोध ने इनके मत का उल्लेख अपनी टीका में किया है। फलत: इनका समय 1150 ईस्वी से पूर्व होना चाहिए।

**(2) वैशम्पायन**- मोक्षधर्म, अर्थात् शान्तिपर्व, के ऊपर लिखी इनकी व्याख्या उपलब्ध है। विमलबोध ने अपनी 'विषम-श्लोकी' नामक महाभारत-व्याख्या में इनके नाम का उल्लेख किया है-

वैशम्पायन-टीकादिदेवस्वामिमतानि च।
वीक्ष्य व्याख्या विरचिता दुर्घटार्थप्रकाशिनी।।

अत: इनका भी आविर्भावकाल 1150 ईस्वी से पूर्व होना चाहिए। देवबोध तथा विमलबोध के बीच की व्याख्याश्रृंखला वैशम्पायन के द्वारा निश्चित रूप से निर्मित की गई है।

**(3) विमलबोध**- इनकी व्याख्या अठारहों पर्वो के ऊपर उपलब्ध होती है। फलत: इनका महत्व प्रौढ़ टीकाकारों में समधिक वैशिष्ट्यपूर्ण है। इन्होने अपनी टीका में धर्मनिबन्धकार के रूप में धारेश्वर (भोज) का, उनके प्रख्यात ग्रन्थ 'सरस्वती-काण्ठा-भरण' का तथा उनके अज्ञातपूर्व धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'व्यवहार-मन्जरी' का सप्रमाणउल्लेख किया है। भोजराज का समय 1010 ई0 से लेकर 1055 तक साधारणतया माना जाता है।1062ई0 के पीछे इनका समय कथमपि नहीं है। इस उल्लेख के कारण विमलबोध का समय धारेश्वर भोज तथा आनन्दपूर्ण के बीच में है। इनकी टीका का नाम- ' विषमश्लोकी' या 'दुर्घटार्थ-प्रकाशिनी या

‘दुर्बोधपदभंजिनी’ है और यह विराट तथा उद्योगपर्व के ऊपर प्रकाशित हुई है (गुजराती प्रिंटिंग प्रेस)।

(4) नारायण सर्वज्ञ-यह टीकाकार कहीं सर्वज्ञ नारायण या केवल नारायण नाम से भी निर्दिष्ट किया गया है। मनुस्मृति के टीकाकारों में भी ‘सर्वज्ञ नारायण’ अन्यतम है, जिसका समय काणे के अनुसार 1130-1300 ई0 है। मनु की टीका का नाम ‘मन्वर्थवृत्ति-निबन्ध’ है, जो मनु की प्रख्यात टीका मानी जातीहै। ये दोनों सर्वज्ञ नारायण अभिन्न वयक्ति माने जाते हैं। इनकी टीका के विस्तार का ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि वह कितने पर्वो के ऊपर विशेष पड़ा। विराट तथा उद्योग पर्व की टीका प्रकाशित है। इस टीका का प्रभाव टीकाकारों के ऊपर विशेष पड़ा। उद्योगपर्व की टीका के परिशिष्ट के रूप में अर्जुन मिश्र ने निम्न कूट श्लोक का व्याख्यान सर्वज्ञ नारायण के मतानुसार किया है।

**विषं भुङ्क्ष्व सहामात्यैर्विनाशं प्रान्नुहि धुवम्।**
**विना केन विना नाभ्यां स्फीतं कृष्णाजिनं वरम्।।**

अत: अर्जुन मिश्र के ऊपर इनके प्रकृष्ट प्रभाव का संकेत इससे स्पष्ट है। इनकी टीका का नाम ‘भारतार्थ-प्रकाश’ है।

**(5) चतुर्भुज मिश्र**- ये भी महाभारत के एक मान्य टीकाकार हैं। इनके समय का परिचय अनेक साधनों से मिलता है। इन्होंने अपनी टीका में ‘मेदिनी कोष’ को प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। मेदिनी का समय 1200 ई0- 1275 ई0 के बीच माना जाता है। उधर आनन्दपूर्ण विद्यासागर ने ( 1350 ई0) अपनी ‘विद्यासागरी’ टीका में चतुर्भुज मिश्र का नाम निर्देश किया है। फलत: इनका समय दोनों के मध्य में कभी मानना होगा। 1300 ई0 के आसपास सर्वज्ञ नारायण के अनन्तर इन्हें स्थान देना समुचित होगा। टीका का नाम ‘भारतोपाय-प्रकाश’ है; जो केवल विराट पर्वपर प्रकाशित है।

चतुर्भुज मिश्र के द्वारा रचित’अमरूशतक’ की एक व्याख्या (भाव-चिन्तामणि) का पता चलताहै, जिसमें ये अपने को ‘काम्पिल्य’ बतलाते हैं। फलत: ये कंपिला (उत्तर प्रदेश के फतेहगढ़ के पास) के निवासी थे। अर्जुनवर्मदेव (1211 ई0 -1215 ई0 के द्वारा रचित अमयशतक की व्याख्या से वे परिचय रखते हैं। फलत: इनका समय 1250 ई के अनन्तर तथा 1660 ई0 के पूर्व (जब इनकी टीका का हस्तलेख मिलता है) होना चाहिए। मेरी दृष्टि में महाभारत के टीकाकार चतुर्भुज मिश्र ही ‘अमयशतक’ के भी टीकाकार हैं और इनका समय 13 वीं शती के अन्तिम भाग में मानना कथमपि अनुचित न होगा।

**(6) आनन्दपूर्ण ‘विद्यासागर’-** ये 14वीं शती के मध्य में एक प्रख्यात सन्यासी थे। विद्यासागर इनका उपनाम था। इनके गुरू का नाम था परमहंस परिव्राजकाचार्य अभयानन्द। अद्वैत वेदान्त के इतिहास में आनन्दपूर्ण एक महिमाशाली प्रौढ़ ग्रन्थकार है जिनकी दार्शनिक कृतियॉ ये है- (1) पंचपादिका टीका,(2) न्यायकल्पलतिका (सुरेश्वराचार्य की बृहदारण्यवार्तिका की टीका), (3) भावशुद्धि(मण्डन मिश्र की ब्रह्मसिद्धि की टीका), (4)

खण्डन खण्डखाद्य की टीका (विद्यासागरी), (5) महाविद्या-विडम्बन टीका(1225 ई0 के आसपास लिखितवादीन्द्र के प्रौढ़ ग्रन्थ की व्याख्या), (6) समन्वय-सूत्र-विवृति(ब्रह्मसूत्र 1।1।4 की टीका), (7) न्यायचन्द्रिका (चार परिच्छदों मे न्याय, मीमांसा तथा वैशेषिक मतों का खण्डन) , (8) वेदान्त–विद्यासागर (वेदान्त का मौलिक ग्रन्थ ), (9) प्रक्रियामंजरी । इनकी महाभारत पर टीका बहुत ही विस्तृत तथा पाण्डित्यपूर्णहै, जिसमें प्राचीन टीकाकारों के मतों का उल्लेख विस्तार के साथ है ।पॉच पर्वो की टीका उपलब्ध है- आदि पर्व (जयकौमुदी), सभा,भीष्म, शान्ति तथा अनुशासन पर्व (व्याख्या रत्नावली)। इनके समय का निर्धारण किया जा सकता है। ऊपर के छठे ग्रन्थ का हस्तलेख 1405 ई0 का तथा दूसरे ग्रन्थ का हस्तलेख 1434 ई0 का है। फलत: 1400 ईस्वी से इन्हें प्राचीन होना ही चाहिये। नौवें ग्रन्थ की रचना कामदेव[1] नामक राजा के समय की गई। ये कामदेव गोवा में राज्य करने वाले कदम्बवंशी नरेश थे, जिनका शिलालेख 1315 ई0 का उपलब्ध होताहै। फलत: आनन्दपूर्ण का समय 1350 ई0 में, अर्थात् 14वीं शती का मध्यभाग मानना उचित होगा। इन्होंने आदिपर्व की टीका(संस्कृत साहित्य परिषद् में उपलब्ध) में सात नये महाभारत के टीकाकारों का उल्लेख किया है, जिनमें से अनेक टीकाकार एकदम नये हैं। इन व्याख्याकारों के नाम है- अर्जुन, जगद्धर, जनार्दन, मुनि लक्ष्मण (टीका का नाम 'विषमोद्धारिणी' जो सभा तथा विराट पर्व पर उपलब्ध है), विद्यानिधि भट्ट तथा सृष्टिधर। विद्यासागर के द्वारा उद्धृत होने से उन सभी का समय 14 शती के मध्यकाल से निश्चित रूप से प्राचीन है।

**(7) अर्जुन मिश्र-** इनकी टीका का नाम 'भारतार्थदीपिका' और 'भारतसंग्रही-दीपिको' है। इसका केवल एक अंश (विराट तथा उद्योग की टीका) अब तक प्रकाशित हुआ है। टीका की पुष्पिका में ये अपने को 'भारताचार्य' की महनीय उपाधि से विभूषित करते है। इनके पिता का नाम था- ईशान, जो भारत के पाठक या पाठकराज थे और अपने पुत्र के समान ही 'भारताचार्य'की उपाधि धारण करते थे। ये बंगाल के निवासी तथा गंगा के तीरस्थ किसी नगर या ग्राम के वासी थे। अपने कुल को 'चम्पाहेटीय' या 'चम्पाहेठि' के नामक स्थान का निवासी था। कलकत्ते से 15 मील दक्षिणपश्चिम में 'चम्पाहाटी' नामक एक स्थान है। सम्भव है कि अर्जुन मिश्र का कुल यहीं का मूल निवासी था। इन्होंने अपने से प्राचीन टीकाकारों में देवबोध, विमलबोध, शाण्डिल्य तथा सर्वनारायण का उल्लेख किया है और ये स्वयं नीलकण्ठ (17 शती का उत्तरार्ध) के द्वारा उद्वृत हुए हैं। इनकी 'अर्थदीपिका' देवबोध की प्रख्यात टीका के आदर्श पर निर्मित है। इसका संकेत इन्होंने अपनी टीका(उद्योगपर्व की ) में स्पष्टत: किया है। मोक्षधर्म पर इनकी टीकाके हस्तलेख का समय 1534 ईस्वी है। इन्होंने मेदिनी कोष (1200ई0 -1275) को उद्धृत तथा सर्वज्ञ नारायण (13वी शती) का निर्देश किया है। फलत: इनका समय 14वीं शती का उत्तरार्ध (1350ई0-1500 ई0) माना जा सकता है। इनकी टीका अल्पाक्षर होने पर भी सारगार्भितहै। सनत्सुजातीय पर्व की व्याख्या में अध्यात्मशास्त्र के सिद्धान्तों का बड़ा ही प्रामाणिक और पाण्डित्यपूर्णविवेचन है। ये

हरिवंश को भी महाभारत का अविभाज्य अंग मानते है। इसीलिए इनकी टीका हरिवंश के ऊपर भी उपलब्ध है।

**(8) नारायण-** पर्व निर्दिष्ठ सर्वज्ञ नारायण आवन्त रकालिन भिन्न टीका कार है; क्योकि इन्होंने स्पष्त: नारायण सर्वज्ञ के मत की आलोचना कर अपनी व्याख्या की रचना की।' इन्होने अर्जुनमिश्र का पूर्व टीकाकारों की गणना में उल्लेख किया है। फलत: इनका समय 14वीं शती के अनन्तर कभी होना चाहिए। इनकी टीका का नाम 'निगुढ्ढार्थ पदबोधिनी ' है।

(9) **वादिराज-** यह टीकाकार दक्षिण भारत के निवासी थे, परन्तु इनके पाठ दक्षिणि कोष से पूर्णत: नही मिलते है न उत्तरीयकोष से मिलते है। इनके पाठ दोनो के बीच नहीं है। विराट पर्व की टीका के अन्त में अपने मध्वगुरू को इन्होंने प्रणाम अर्पित किया है। वादिराज का समय तथा कार्य माध्व सम्प्रदाय के इतिहास में नितान्त महत्वपूर्ण है। अपने 'तीर्थप्रबन्ध काव्य ' (हस्तलेख भण्डार कर संस्थान में ) में इन्होंने पण्डरपूर के विढोवा (विट्ठल ) की मूर्ति के तुंगभद्रा तीरस्थ विजयनगर के स्थानन्तरण का उल्लेख किया है। कृष्ण देव राम के समय में (1509-1530 ई0 ) इस स्थानतरण की घटना की संभावना है। इन्हें अग्रहार देने का उल्लेख 1493 शक वर्ष के (1571ईव ) एक शिलालेख में मिलता है। इनके प्रधान शिष्य कर्नाटक के प्रख्यात संत कनकदास का समय 1550 ई0 – 1570 ई0 के आसपास है। फलत: वादिराज का समय 16वीं शती का मध्यभाग लगभग 1525 ई0 -1575 ई0 मानना उक्त शिलालेख के स्पष्ट आधार पर सुनिश्चित है। अपने नाम का अर्थ इन्होंने स्वयं लिखा है' – वादी (माध्वाचार्य) राजा है जिसके वह व्यक्त, अर्थात् माध्वाचार्य का दास। वादिराज द्वैतमतानुयायी आचार्यों में अन्यतम प्रौढ नैयायिक थे। इनकी महाभारत –टीका का नाम 'लक्षाभरण' या लक्षालंकार भी है। विराट तथा उद्योग पर्व पर यह प्रकाशित है(गुजराती प्रैस )।

**(10) नीलकण्ठ** – इनका पूरा नाम नीलकण्ठचतुर्धर (चौधरी) है और इनके वंशज आज भी महाराष्ट्र में विद्यमान है। इनकी टीका नितान्त प्रख्यात , 'भारतभाव भावदीप' बहुश: प्रकाशित हुई है।[2] यह महाभारत के 18 पर्वो पर उपलब्ध है। नीलकण्ठ के पूर्वज महाराष्ट्र कूर्पर ग्राम (आजकल कोपर गॉव, बम्बई प्रान्त का अहमदनगर जिला) के मूल निवासी थे, परन्तु इस टीका की रचना काशी में की गयी, जहॉ वे आकर बस गये थे। **नीलकण्ठ ने मन्त्र** - रामायण तथा मन्त्र – भागवत नामक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया है, जिसमें रामयण और भागवत की कथा से संबद्ध मन्त्र ऋगवेद से क्रमबद्ध संग्रहीत है तथा नीलकण्ठ ने इनके ऊपर अपने सिद्धान्तानुसार टीका भी लिखी है। नीलकण्ठ चतुर्धर के पिता का नाम 'गोबिन्द ' था तथा पुत्र का भी नाम 'गोबिन्द' था, जिनके पुत्र (अर्थात् नीलकण्ठ के पौत्र) शिव ने पैठण मे रहते हुए 'धर्मतत्व -प्रकाश' ग्रन्थ का निर्माण 1746 ई0 में किया। नीलकण्ठ की 'शिवतान्डव-टीका' का रचनाकाल 1680 ई0 तथा गणेश गीता की टीका का रचना काल 1693 ई0 है। 'भारत-भाव द्वीप ' के नानाहस्तलेखों का समय 1687 ई0 से लेकर 1695 ई0 है, अत: इनका समय 1650 ई0 1700 ई0 मानना उचित प्रतीत होता है

## समीक्षण

संस्कृत-साहित्य में आदिकवि वाल्मीकि के अनन्तर महाऋषि व्यास ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए। इनके लिखित काव्य ' आर्ष –काव्य ' के नाम से प्रसिद्ध है। पिछली शताब्दियों में संस्कृत की जो उन्नति हुई , जिन काव्य–नाटकों की रचना हो गयी उनमें इन दो ग्रन्थों का प्रभाव मुख्य है। महाकवि कालीदास ने रघुवंश में इन कवियों की बडे आदर के शब्दों में संकेत किया है। व्यास की प्रतिभा की परिचायक यही घटना है। कि युद्धो के वर्णन में कहीं भी पुनरूक्ति नहीं दीख पड़ती है। व्यास जी का अभिप्राय महाभारत लिख कर केवल युद्धों का वर्णन नहीं है, अपितु इस भौतिक जीवन की नि:सारथा दिखलाकर प्राणियों को मोक्ष के लिए उत्सुक बनाना है। इसी लिए महाभारत का मुख्य रस शान्त है, वीर तो अंगभूत है। इसमें प्राकृतिक वर्णन नितान्त अनुठे तथा नवीनता पूर्ण है। व्यास जी की यह कृति महाकाव्य न होकर इतिहास कही जाती हैं; क्योंकि वह हमारे आदरणीय वीरों की पुण्यमयी गाथा है। यह वह धार्मिक ग्रन्थ है जिसमें प्रत्येक श्रेणी का मनुष्य अपने जीवन के सुधार की सामग्री प्राप्त कर सकता है। राजनीति का तो वह सर्वस्व ही है। राजा और प्रजा के पृथक –पृथक कर्तव्यों तथा अधिकारों का समुचित वर्णन इसकी महती विशेषता है। वाल्मीकि के साथ-साथ से भी हमारे कवियों को काव्यसृष्टि के लिए प्रेरणा तथा स्फूर्ति मिलती आई है और आगे भी मिलेगी। भगवद्गीता की महत्ता का प्रदर्शन करना आवश्यक है। कर्म, ज्ञान और भक्ति का जैसा मंजुल समन्वय गीता में किया गया है वैसाअन्यत्र अप्राप्य है। व्यास जी का कथन है कि इस आख्यान को बिना जाने हुए जो पुरूष वेदांग तथा उपनिषदों को भले जानें, वह कभी विचक्षण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह महाभारत एक साथ ही अर्थशास्त्र ,धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र है[2]। जिसने इस आख्यान का रसमय श्रवण किया है उसे अन्य कथानकों में किसी प्रकार का रस नहीं मिलता, ठीक उसी प्रकार, जैसे कोकिल की मधुर कूक के आगे कौए की बोली नितान्त रूखी प्रतीत होती है[3]। महाभारत की प्रशंसा में व्यास ने स्वयं इसे समस्त कविजनों के लिए उपजीव्य बतलाया है। इस ग्रन्थ के अभ्यास से कवियों की बृद्धि में स्फूर्ति उत्पन्न होती है- व्यास जी का यह कथन अक्षरश: सत्य है। बाद के कविजनों ने **सचमुच महाभारत से बहुत कुछ लिया है:-**

**इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कवि-बुद्धय:।**
**पन्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रय: ।।**
**इदं कविवरै: सर्वेराख्यानमुपजीव्यते ।**
**उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वर:।**

महाभारत के पात्रों में एक विचित्र सजीवता भरी हुई है। सब अपने-अपने ढंग के निराले पात्र हैं; परन्तु धर्मराज में जो धार्मिकता दिखाई पड़ती है वह एक अद्भुत वस्तु है। महाभारत सदा से धर्मशास्त्र के रूप में ही गृहीत होता आया है। वस्तुत: वह है भी धर्म का ही प्रतिपादक ग्रन्थ। व्यास ने अपना सन्देश मनुष्यों के लिए सुन्दर श्लोक में निबद्ध कर दिया है[1]। यदि मनुष्य सच्चा सुख का अभिलाषी है तो उसका परम कर्तव्य धर्म का सेवन ही है।

महाभारत का वैशिष्टय

महर्षि वेदव्यास ने भारतीय अर्थनीति, राजनीति तथा अध्यात्म-शास्त्र के सिद्धान्तों का सारांश इतनी सुन्दरता से इस ग्रन्थरत्न में प्रस्तुत किया है कि यह वास्तव में भारत के धर्म तथा तत्वज्ञान का विश्वकोष है। धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है और इसीलिए व्यासजी ने अधर्म से देश का नाश तथा धर्म से राष्ट्र के अभ्युत्थान की बात बड़े ही सुन्दर आख्यानों के द्वारा हमें सिखलाई है। 'भारत-सावित्री' (जो महाभारत की भव्य शिक्षा का सार-संकलन माना जाता है) में व्यास की स्पष्ट उक्ति है कि धर्म का परित्याग किसी भी दशा में, भय से या लोभ से कभी नहीं करना चाहिए। धर्म शाश्वत है चिरस्थायी है-

**न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्**
**धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोंः।**
**धर्मो नित्यः सुख-दुःखे त्वनित्यः।**
**जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।**

व्यास कर्मवादी आचार्य हैं। कर्म ही मनुष्य का पक्का लक्षण है, कर्म से पराड़मुख मानव मानव की पदवी से सदा वंचित रहता है (अश्वमेध0 43/27)-

**प्रकाश-लक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः।**

इसीलिए' यह भव्य भारतभूमि कर्मभूमि है। फल भोगने का स्थान तो स्वर्ग है, जो इस भूमि के छोड़ने के अनन्तर प्राप्त होता है। इस बिशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ वस्तु है, जिसके कल्याण के लिए पदार्थो की सृष्टि होती है तथा समाज की व्यवस्था की जाती है। आज के समाजशास्त्रियों का यह सिद्धान्त कि मनुष्य ही इस विश्व का केन्द्र है व्यास के इस कथन पर आश्रित है (शान्ति0180/12)-

**गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि।**
**नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किन्चित्।।**

मानवता का उन्नयक तत्व पुरूषार्थ ही है। व्यास के शब्दों में यह सिद्धान्त 'पाणिवाद' के नाम से विख्यात है। जगत् में जिन लोगों के पास 'हाथ' है- जो कर्म में दक्ष तथा उत्साही हैं- उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं। संसार में पाणिलाभ से बढकर लाभ ही कोई दूसरा नहीं है। मानव-जीवन की कृतकार्यता हाथ रखने तथा हस्त-संचालन मे ही तो है। हाथ रहते भी हाथ पर हाथ रखकर जीवन बिताना पशुत्व का व्यंजक चिह्न है। इसमें मानव की सिद्धार्थता नहीं है( शान्ति0 180/11,12) –

**अहो सिद्धार्थता तेषां सन्तीह पाणयः।**
**अतीव स्पृहये येषां सन्तीह पाणयः।।**
**न पाणिलाभदधिको लाभः कश्चन विद्यते।**

## राष्ट्रभावना

व्यासजी की राष्ट्रभावना बड़ी ही उदात्त, विशुद्ध तथा ओजस्विनी है। राजा राष्ट्र का केन्द्र होताहै। तथा स्वेच्छाचारी राजाओं के दोषों से भी विहीन होता है। वह होता है प्रजा का

सर्वभावेन हितचिन्तक तथा मंगलसाधक। भारतीय धर्म ही राजमूलक होता है, अर्थात् धर्म की व्यवस्था तथा संचालन का उत्तरदायित्व राजा के ही ऊपर एकमात्र रहता है। यदि राजा प्रजा का पालन नहीं करे,तो प्रजा ही एक दूसरे को न खा डालेगी, प्रत्युत वेदत्रयी का भी अस्तित्व लुप्त हो जायेगाऔर विश्व को धारण करने वाला धर्म ही रसातल में डूब जायेगा। राजधर्म के बिगड़ने पर राज्य तथा राष्ट्र का सर्वनाश हो जाताहै। राजनीतिक नेता के लिए महाभारत एक विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है, जो आज भी उतने ही सुन्दर रूप से अनुकरणीय तथा ग्राह्य है। भारत कृषि-प्रधान राष्ट्र है। अत: व्यास जी का आग्रह है कि जो नेता स्वयं अपने हाथों कृषि नहीं करता,खेत नहीं जोतता-बोता, उसे नेता बनकर राष्ट्र की समिति में जाने का अधिकार नहीं होता।

**न न: समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत्कृषिस्।** (उद्योग0 36/31)

ठीक ही है, किसानों का नेता किसान ही हो सकता है। कृषि से अनभिज्ञ, कुर्सीतोड़, बकवादी नेता किसानों का कौन –सा मंगल कर सकता है ?

## अध्यात्म तत्व

व्यासजी अध्यात्मशास्त्र की सूक्ष्म बारीकियों में न पड़कर हमें सुखद तथा नियमित जीवन बिताने की शिक्षा देने पर आग्रह करते हैं। मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रिय- निग्रह से ही होता है। मनुष्य इन्द्रियों का दास बनकर पशुभाव को प्राप्त होता है और इन्द्रियों का स्वामी बनकर अपने जीवन को सफल बनाने में समर्थ होता है। एक स्थान पर व्यास की यह सारगर्भित उक्ति है कि वेद का उपनिषद् अर्थात् रहस्य है- सत्य। सत्य का भी उपनिषत् है-- दम और इसी दम-- इन्द्रिय-दमन का-रहस्य है मोक्ष।समग्र अध्यात्म-शास्त्र का यही निचौड़ है (शान्ति0 299/13)-

**वेदोस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दम:।**
**दमस्योपनिषद् मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्।।**

'करनी बड़ी है कथन से' - व्यासजी की यही मान्य शिक्षा है मानवों के लिए महाभारत में किसी बोध्य ऋषि के द्वारा कही गई यह प्राचीन गाथा इसी तथ्य पर जोर देती है (शान्ति0 178/6) –**उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कन्चन।**

भारतीय संस्कृति आर्जव-ऋजुभाव- स्पष्ट कथन तथा सीधे आचरण को ही मानव-जीवन में नितान्त महत्व देती है। वह जिह्म मार्ग- टेढ़ा रास्ता- 'मनस्यन्यत वचस्यन्यत्' को मृत्यु का रूप बतलाती है तथा प्राणियों को उसके मानने से सदा दूर भागने का उपदेश देती है( शान्ति0 11/4)-

**सर्व जिह्मं मृत्युपपदमार्जवं ब्रह्मण: पदम्।**
**एतावान् ज्ञानविषय: किं प्रलाप: करिष्यति।**

काल के चक्र से कोई बच नहीं सकता। पाण्डवों की विषय तथा समृद्ध दशाओं के आलोचक की दृष्टि में काल की महिमा अपरिमेय है। काल ही कभी बलवान बनता है

और कभी दुर्बल । वही जगत् को अपनी इच्छा से ग्रसता है। इसी चक्र के भीतर यह समग्र विश्व अपनी सत्ता धारण किये हुए है। वह देवनिर्मित मार्ग है जिसे लाख चेष्टा करने पर भी कोई पलट नहीं सकता। मानव जीवन का श्रेयस्कर मार्ग है धर्म का आश्रय लेकर आत्मविजय करना। व्यास जी ने आत्म-साक्षात्कार के लिए बडी सुन्दर उपमा दी है। जिस प्रकार मूंज से सींक को अलग किया जाता है,उसी प्रकार पंचकोशों में अन्तर्निहित चैतन्यरूप आत्मा को भी साधक पृथक् कर साक्षात्कार करता है। आनन्दवर्धन की तो यह स्पष्ट सम्मति है कि महाभारत का मुख्य रस शान्त रस है। नाना विकट प्रपंचों में न लिप्त होकर मानव आत्मवस्वरूप का परिचय पाकर मोक्ष का सम्पादन करे। महाभारत की यही अमूल्य शिक्षा है।

## रामायण-महाभारत की तुलना

रामायण और महाभारत की तुलना करने से अनेकआवश्यक तथ्यों का पता चलता है। मुख्य तुलना दो विषयों में की जा सकती है। प्रथम तो उनके वर्णनीय विषय को लेकर और दूसरी उनके रचना-काल को लेकर। रामायण आदिकाव्य माना जाता है और महाभारत इतिहास गिना जाता है। इस पारस्परिक भेद का यह अभिप्राय है कि रामायण के काव्यगत चमत्कार महत्व की वस्तु है। महाभारत में प्राचीनकाल के अनेक प्रसिद्ध राजाओं के इतिवृत्त का वर्णन करना ही ग्रन्थकार का उद्देश्य है। इसीलिए रामायण में राम-रावण की घटना ही सर्वभावेन मुख्य है। अन्य छोटे-मोटे कथानक भी हैं, परन्तु वे प्रधान वृत्त को पुष्ट करने के लिए ही रचित हैं। उधर महाभारत में प्रधान घटना कौरवों तथा पाण्डवों का युद्ध है, पर इसके साथ-साथ प्राचीन काल की अनेक कथाऍ अवान्तर रूप से दी हुई, जो मुख्य घटना से कम महत्व नहीं रखती। दोनों का भौगोलिक विस्तार भिन्न-भिन्न है। रामायण में जिस भारतवर्ष की चर्चा है उसकी दक्षिणी सीमा विन्ध्य और दण्डक है, पूर्वी सीमा विदेह है तथा पश्चिमी सीमा सुराष्ट्र है; परन्तु महाभारत के समय आर्यावर्त का विशेष विस्तार दीख पड़ता है।

पूर्वी सीमा गंगासागर का संगम है, दक्षिण में चोल तथा मालाबार प्रान्तों की सत्ता है। इतना ही नहीं, लंका के भी अधिपति उपहार लेकर लेकर स्वयं उस यज्ञ में उपस्थित होते हैं। फलत: भारतवर्ष का भौगोलिक विस्तार उस युग में रामायण की अपेक्षा अत्यधिक है।

दोनों के स्वरूप में भी पर्याप्त अन्तर है। रामायण में एक ही कवि की कोमल लेखनी ने अपना चमत्कार दिखलाया है। कविता में समरसता, शब्द और अर्थ का मंजुल सामन्जस्य है, जिससे यह स्पष्ट है कि इसके रचना का श्रेय किसी एक ही व्यक्ति को है; परन्तु महाभारत के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह तो अनेक शताब्दियों के साहित्यिक प्रयासों का फल है। धीरे-धीरे अपने अल्पकलेवर से बढता हुआ वह लक्षश्लोकात्मक विशालकाय ग्रन्थ के रूप में आ गया है। रामायण के लेखक की चर्चा कहीं नही है, प्रत्युत लव तथा कुश के द्वाराउसके गाये जाने के तथ्य से हम परिचित है 1, परन्तु महाभारत

लिपिबद्ध किया गया ग्रन्थरत्न है,जिसके लिपिबद्ध करने का श्रेय स्वयं गणेशजी को प्राप्त है। व्यास जी बोलते जाते थे और गणेशजी उसे लिखते जाते थे।

रामायण और महाभारत में किसकी रचना पहले हुई ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। गत शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डाक्टर वेबर ने सर्वप्रथम यह कहना प्रारम्भ किया कि रामायण की अपेक्षा महाभारत की रचना पहले हुई। रामायण में सुन्दर पदविन्यास तथा सुबोध रचना को वे अर्वाचीनता मानते थे। भारत के भी कतिपयविद्वानों ने इसी मत की घोषणा की , परन्तु भारतीय परम्परा उक्त मत के अत्यन्त विरूद्ध है। वाल्मीकि आदिकवि और महाभारत के रचयिता व्यास उनके पश्चाद्वर्ती द्वितीय कवि हैं। युग के हिसाब से भी अन्तर पड़ता है। वाल्मीकि त्रेतायुग में होने वाले रामचन्द्र के समकालिक हैं और व्यास द्वापरयुग में उत्पन्न होनेवाले पाण्डवों के समसामयिक हैं। इतना ही नहीं, दोनों ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि कालक्रम में वाल्मीकि-रामायण महाभारत से पहले की रचना है। इसके पोषक प्रमाण मुख्यत: नीचे दिये जाते है:--

(1) महाभारत के पात्रों के चरित्र में तथा घटनाओं में व्यवहारिकता का पुट है। जुआ खेलना, खेल में हार जाना, राज्य का न मिलना और उसके लिए युद्ध करना आदि घटनायें व्यवहार तथा विश्वास के क्षेत्र से बाहर नहीं है; पर रामायण में ऐसी घटनाएॅ हैं जिन पर साधारण मनुष्य अपनाविश्वास नहीं जमा पाता। सन्तान के लिए पुत्रेष्टि याग करना रीछ और बानरों की सहायता से लड़ना, समुन्द्र के ऊपर पत्थर का विराट पुल बॉधना, रावण का दश सिर होना आदि घटनाएॅं मानव-संस्कृति की उस प्राथमिक दशा की ओर करती हैं जब आश्चर्यजनक घटनाओं में विश्वास करना कोई अस्वाभाविक बात न थी।

(2) रामायण में आर्य-सभ्यता अपने विशुद्ध रूप में चित्रित की गई है। उसमें म्लेच्छों का, जो सम्भवत: भिन्न वर्ग तथा संस्कृति के अनुयायी थे, तनिक भी सम्पर्क नही दीख पड़ता, परन्तु महाभारत में म्लेच्छों का सम्पर्क पर्याप्त रूप से विद्यमान है। दुर्योधन की आज्ञा से जिस पुरोचन नामक मन्त्री ने लाख (लाक्षा) का घर बनाया था, वह म्लेच्छ ही था। महाभारत के युद्ध में दोनों ओर से लड़ने वाले अनेक म्लेछ राजाओं के भी नाम मिलते हैं। इतना ही नहीं, विद्वान लोग म्लेच्छो की भाषा से भी परिचत थे। विदुर ने इसी म्लेच्छ-भाषा में युधिष्ठिर को लाख के घर की घटना की सूचना पहले ही सभा में दी थी। उक्त भाषा का प्रयोग इसलिए किया गया कि अन्य सभासद् इसकों समझ न सकें।

(3) भौगोलिक दृष्टि से विचार करने पर भी महाभारत पीछे लिखा गया मालूम होता है। रामायण की रचना के समय में दक्षिण भारत में अनार्य जंगली जातियों का ही निवास था। आर्यो की सभ्यता विन्ध्य पर्वत तक ही सीमित थी, परन्तु महाभारत के समय में दक्षिण भारत राजनीतिक दृष्टि से व्यवस्थित सुशासित तथा सभ्य दीख पड़ता है। भीष्मपर्व में दक्षिण भारत का यह राजनीतिक परिवर्तन सूचित करता है कि महाभारत की रचना रामायण से पीछे हुई।

(4) महाभारत युद्ध में युद्धकला की विशेष उन्नति दिखाई पडती है। द्रौपदी के स्वयंबर में सीता-स्वयंवर के समान केवल एक धनुष को तोड़ देना ही वीरत्व का मापदण्ड नहीं है, प्रत्युत एक विशिष्ट प्रकार से लक्ष्य भेद करना वीरता की कसौटी है। लंकायुद्ध में योद्धागण परस्पर केवल पत्थरों और वृक्षों से प्रहार करते हैं, परन्तु महाभारत युद्ध में सैनिक लोग विशिष्ट सेनापति की देख-रेख में लड़ते हैं। व्युह की रचना इस युद्धकी महती विशेषता है, जिसमें अल्पसंख्यक सैनिक बहुसंख्यक सेना के आक्रमण को रोकने में समर्थ होता हैं। युद्धकला का यह महाभारत –कालीन विकास इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि महाभारत बाद की रचना है।

(5) दोनों की सामाजिक दशा में विशेष अन्तर है रामायण का समाज आदर्शवाद कर प्रतिष्ठित है। पिता कुटुम्ब का नेता तथा पोषक है। राम आदर्श पुत्र है, भरत भ्रातृत्व के गुणों के आगार हैं, सुग्रीव मित्रता की कसौटी हैं। ऊपर महाभारत की सामाजिक दशा में आदर्शवाद के लिए स्थान नहीं है। भरत के समान भीम अपने पितृतुल्य जेठे भाई के आदेश का पालन करना अपना कर्तव्य नहीं मानते। यदि धर्मराज संधि करने के इच्छुक हैं, तो वे उनका घोर विरोध(अश्‍वत्थामा द्वारा) करने पर तुले हैं। विजयकी सिद्धि के लिए चोरी करना या असत्य भाषण किसी प्रकारका पाप नहीं माना जाता था (अश्‍वत्थामा हतौ नरो वा कुंजरो वा)।

(6) रामायण में नैतिक भावना अपने ऊँचे आदर्श पर प्रतिष्ठित है, परन्तु महाभारत में यह भावना ह्रास पाकर नीचे खिसकने लगी है। मैथिली तथा द्रौपदी के चरित्र की तुलना इसे स्पष्ट करती है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान सीता को अपनी पीठ पर बैठा कर राम के पास चलने का प्रस्ताव करते हैं, परन्तु सीता पर-पुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती हैं। अत: वह इसे तिरस्कार कर देती हैं। रावणवध के अनन्तर सीता कठिन अग्नि-परीक्षा में तप्त होकर अपने पावन चरित्र को सिद्ध करती हैं। महाभारत की द्रौपदी काम्यक वन में जयद्रथ के द्वारा हरण की जाती हैं, परन्तु उसका पुनर्ग्रहण विना किसी रोक-टोक के धीरे से कर लिया जाता है।

(7) रामायण में महाभारत की घटनाओं तथा पात्रों का उल्लेख तक नही है, परन्तु महाभारत रामायण की कथा तथा पात्रों से पूरी तरह परिचित है। वनपर्व के तीर्थ-यात्रा प्रसंग में श्रृ ड्गवेरपुर' (प्रयाग जिले का सिंगरामऊ, वन पर्व85/65 ) तथा गोप्रतार' (फैजाबाद में सरयू का गुप्तार घाट , वनपर्व 85/70) तीर्थ में गिने गये हैं, क्योंकि पहले स्थान पर राम ने गंगा पार किया और दूसरे पर वे अपनी प्रजाओं के साथ भूलोक से स्वर्ग में चले गये। वनपर्व के अठारह अध्यायों में (अ0 274-291) रामोपाख्यान पर्व है, जिसमें रामचन्द्र की कथा संक्षेप से वर्णित है। इस उपाख्यान में वाल्मीकीय रामायण के श्लोक भी ज्यों के त्यों रखे गये हैं। उपमाएॅं तथा कल्पनाएॅं भी वाल्मीकि से ली गई है।

रामायण के श्लोकों की समता केवल रामोपाख्यान में ही उपलब्ध नहीं होती, प्रत्युत महाभारत के अन्य पर्वो में भी यह समता तथा निर्देश नितान्त सुस्पष्ट हैं। उदाहरणार्थ

–माया सीता के मारते समय इन्द्रजीत ने हनुमानजी से जो वचन कहे थे, वे ही वचन द्रोणपर्व में भी अक्षरश: प्राप्त होते हैं।

**न हन्तव्या: स्त्रिय:इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।**
**पीडाकरममत्रिणां यत्तु कर्तव्यमेव तत्।। (युद्ध0 81-28)**

महाभारत के द्रोण पर्व में इसका उल्लेख वाल्मीकि के नाम से है-

**अति चायं पुरा गीत: श्लोको वाल्मीकिना भुवि।**
**न हन्तव्या: स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।।**
**सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।**
**पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्।।**

इन प्रमाणों के अनुशीलन से किसी भी निश्पक्ष आलोचक को भारतीय परम्परा की सत्यता पर अविश्वास नहीं हो सकता कि रामायण कालक्रम से महाभारत से पूर्व की रचना है।

### अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1.द्वैपायन किसे कहा जाता है।

क. वाल्मीकि ख. **व्यास** ग. कृष्ण घ. बलराम

2. शतसाहस्री संहिता किसे कहते है।

क. रामायण ख. **महाभारत** ग. सनतकुमार संहिता घ. पुराण

3. महाभारत का प्राचीन नाम है।

क. **जय** ख. महाभारत ग. संहिता घ. कोई नही

4. भारत के साथ महाभारत का नाम किस ग्रन्थ में मिलता है।

क. गौतम धर्मसूत्र ख. पारस्कर गृह्यसूत्र ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** घ. कोई नहीं

5. महाभारत में कितने श्लोक है।

क. **1 लाख** ख. 2 लाख ग. 3 लाख घ. 4 लाख

6. महाभारत के उपाख्यानों का सम्बन्ध सर्वाधिक किस वंश से है।

क. **भृगु** ख. अंगिरा ग. वशिष्ठ घ. अत्रि

7. यूनानी राजदूत मेगास्थनीज किसके कार्यकाल में आया था।

क. समुद्रगुप्त ख. विष्णुगुपत ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य घ. रामगुप्त

8. महाभारत के खण्डों को क्या कहा जाता है।

क. अध्याय ख. **पर्व** ग. रत्न घ. मरीचि

## 2.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आपको ज्ञात हुआ कि रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट

निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास –वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मग्रन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। रामायण और महाभारत दोनों में बहुत कुछ अन्तर है। फिर भी रामायण में वर्णित तथ्यों के समानान्तर उनके चर्चायें महाभारत में कई पर्वों में पायी जाती है। महाभारत के अनेक पर्वों में रामायणकालीन घटनाओं की वस्तु स्थिति का परिचय प्राप्त है। यह ग्रन्थ जय भारत और महाभारत के नाम से क्रमश: पूर्णता को प्राप्त हुआ। इसमें कुल श्लोकों की संख्या 100000 मानी गयी है। इसकी पुष्पिका में व्यास ने धर्मार्थ काम मोक्ष आदि का वर्णन किया है।

## 2.6 शब्दावली

1. स्वर्गारोहण – स्वर्ग पर पहुँचना।
2. शरशय्या - बाणों से बनाये हुये शयन स्थान को कहा जाता है।
3. मत्स्य - मछली
4. अनन्तर - बाद में
5. शतसाहस्री – शत का अर्थ होता है सौ तथा सहस्र का अर्थ है एक हजार। अंकानां वामतो गति के अनुसार सौ हजार होकर एक लाख अर्थ कहलाता है।

## 2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख. **व्यास** 2. ख. महाभारत 3. क. **जय** 4. ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** 5. क. **1 लाख** 6. क. भृगु 7. ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य 8. ख. पर्व

## 2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

## 2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाभारत के पर्वों का नामोल्लेख कर उनके विषय में संक्षिप्त लेखन करें।
2. व्यास का परिचय देते हुये व्यासोपाधि पर विस्तृत चर्चा कीजिये।
3. महाभारत के अंगीरस पर एक निबन्ध लिखिये।